शरणागति

श्रीलभक्ति दयित माधव गोस्वामी

महाराज जी

कल को श्रीकृष्ण की अविर्भाव तिथि है, इसलिए आज अधिवास के दिन 'भगवत्प्राप्ति का उपाय' वक्तव्य विषय के रूप में निर्धारित हुआ है। हमारा पहला प्रश्न है, यदि कोई कहे कि मैं भगवान् को नहीं मानता हूँ इसलिए उनकी प्राप्ति के उपाय के सम्बन्ध में आलोचना निरर्थक है तो उसके उत्तर में कहा गया है कि

ईश्वर को मानना सभी जीवों में स्वतः सिद्धरूप से है। आस्तिक, नास्तिक सभी ईश्वर को मानते हैं। जहाँ पर ईशिता या ऐश्वर्य है, वहाँ पर स्वाभाविक रूप से सभी झुकते हैं। छोटे से छोटे प्राणी भी ईश्वर को मानते हैं, इसलिए परमेश्वर मानने में कोई अस्वाभाविकता नहीं है, बल्कि भगवान् को मानना अधिक

समझदारी की बात है। आग को न मानने से आग का कोई नुकसान नहीं है; दूसरी ओर आग को मानने से आग के द्वारा अनेक प्रकार के कार्य संपन्न किये जा सकते हैं, इसलिए जो भगवान् को मानता है, उसका ही लाभ है। यह अधिक बुद्धिमानी का परिचायक है।

छोटे छोटे ईश्वरों का हम

देख सकते हैं, इसलिए मानते हैं; परमेश्वर को देखा नहीं जाता, अतएव हम नहीं मानते। यदि इस प्रकार तर्क हो तो उसका उत्तर यह है कि अपनी सीमित ताकत वाली क्षणभंगुर इन्द्रियों के द्‌वारा हम कितनी उपलब्धि कर सकते हैं। जिन सब विषयों की हमारी इन क्षुद्र-इन्द्रियों के द्‌वारा उपलब्धि न हो तो उनका अस्तित्व हम

नहीं मानेंगे, क्या हमारी यह बात युक्तिसिद्ध होगी?

एक-एक प्रकार के विषय को समझने के लिए एक-एक प्रकार की योग्यता की आवश्यकता होती है। जब तक वह अधिकार या योग्यता अर्जित न हो, तब तक हम उस वस्तु के विषय में ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकते हैं। उदाहरण के लिए कहा जा

सकता है कि हम बहुत प्रकार की भाषा जानने पर भी यदि उर्दू भाषा न जानते हों तो दूसरी भाषाओँ के ज्ञान के द्वारा उर्दू भाषा नहीं समझी जा सकती। आँखे रहने पर भी उर्दू भाषा के शिक्षा रूपी पृथक अधिकार या योग्यता अर्जन न करने से जिस प्रकार उर्दू भाषा का रूप और शक्ति अर्थात् अर्थ हृदयंगम नहीं होता, उसी प्रकार

परमेश्वर की उपलब्धि के लिए जो अधिकार या योग्यता चाहिए, वह अर्जित न होने तक जितनी प्रकार की भी दुनियावी योग्यता या ज्ञान क्यों न रहें हम उसे समझने अथवा उसकी उपलब्धि करने में समर्थ नहीं होते हैं। परमेश्वर स्वतःसिद्ध तत्त्ववस्तु होने के कारण उनमे शरणागति के बिना, उनकी कृपा बिना कोई भी उनको

जानने व अनुभव करने में समर्थ नहीं होता है।

असीम को, सर्वशक्तिमान को किसी ने जान लिया है या समझ लिया, यह बात कहने से असीम के असीमत्त्व की व सर्वशक्तिमान् की सर्वशक्तिमत्ता की हानि होती है। दूसरी ओर यदि असीम व सर्वशक्तिमान् स्वयं को न जना सकें, वे हमें अपना

अनुभव प्रदान न कर पायें तो भी उनके असीमत्त्व की व उनकी सर्वशक्तिमत्ता की हानि होती है। अर्थात् तब भी हम उन्हें असीम या सर्शक्तिमान् नहीं कह पाएंगे क्योंकि उनमें ये ताकत ताकत नहीं है कि वे अपने आपको हमें जना पायें। अतः ये सिद्धांत बना कि जीव अपनी चेष्टा से भगवान को नहीं जान सकता व नहीं समझ

सकता है। हाँ, भगवान यदि कृपा करके जनायें तो जान सकता व समझ सकता है। प्रमाण, यथा कठोपनिषद्:-

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो, न मेधया न बहुना श्रुतेन।
यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुतेतनुं स्वाम्।।
(मुण्डकोपनिषद् 3/2/3)

अर्थात् इस परमात्म वस्तु को तर्क, मेधा या पाण्डित्य द्वारा नहीं जाना जा सकता। जब जीवात्मा भगवान् के प्रति

सेवोन्मुख होकर परमात्मा की कृपा याचना करता है, तब उसी के निकट वे परमात्मा अपना स्वयंप्रकाश श्रीविग्रह प्रकट करते हैं।

इसलिए अशरणागत व्यक्ति कितनी प्रकार की भी चेष्टा क्यों न कर ले, वह परमेश्वर के अस्त्तित्व की उपलब्धि करने में समर्थ नहीं होता है। अशरणागत

हिरण्यकशिपु गदा हाथ में लेकर विष्णु को मारने के लिए बहुत खोजता रहा परन्तु विष्णु को देख न पाया; जबकि शरणागत भक्त प्रह्लाद जी विष्णु की कृपा से विष्णु को सर्वत्र देख पाये।

कोई-कोई कहता है कि भगवान का आकार नहीं है, रूप नहीं है, उनके निर्गुण स्वरुप का अविर्भाव नहीं है, मायिक जगत्

में आविर्भूत होने के लिए माया के गुण लेकर ही उनको आविर्भूत होना होगा इत्यादि।

उसके उत्तर में कहते हैं की पहले हमें समझना होगा कि भगवान् किसे कहते हैं? भगवान् शब्द का अर्थ क्या है? “जिनका भग” है उनको भगवान् कहते हैं। ‘भग’ शब्द का अर्थ है-शक्ति। शक्तियुक्त तत्त्व को भगवान् कहते हैं।

शास्त्र में (विष्णुपुराण में) भगवान् शब्द का अर्थ किया गया है- समग्र (तमाम) ऐश्वर्य, समग्र वीर्य, समग्र यश, समग्र सौन्दर्य, समग्र ज्ञान और समग्र वैराग्य जिस तत्त्व में निहित है, उन्हें भगवान् कहते हैं। क्योंकि भगवान् सर्वशक्तिमान् हैं, असीम हैं, इसलिए वे किसी भी स्थान पर, जिस-किसी भी रूप में

प्रकट हो सकते हैं। यदि वे यह नहीं कर सकते, तब उनकी सर्वशक्तिमत्ता की, असीमत्त्व की हानि होती है।

वे यह कर सकते हैं, और ये नहीं कर सकते- सर्वशक्तिमान् के सम्बन्ध में इस प्रकार की उक्ति का प्रयोग नहीं हो सकता। हम जो-जो शक्ति भगवान् को देंगे, वह-वह शक्ति ही भगवान् में रहेगी, उसके

अतिरिक्त नहीं रह सकती, जैसे हम ही परमेश्वर के निर्माता हों। सर्वशक्तिमान् ऐसा नहीं होता व ऐसे को हम सर्वशक्तिमान् कह भी नहीं सकते। हमारी कल्पना में अथवा उससे बाहर जितने प्रकार की शक्ति हो सकती है एवं हमारी कल्पना के अतीत भी जो शक्तियुक्त-तत्त्व हैं, वे ही भगवान् हैं, उन्हें ही

सर्वशक्तिमान् कहते हैं। असीम के लिए कुछ भी असम्भव नहीं हैं-

‘कर्त्तुमकर्त्तुमन्यथा कर्त्तुं यः समर्थः स एव ईश्वरः।’

सर्वशक्तिमान् जिस किसी भी स्थान में, जिस किसी भी मूर्ति से, सर्वशक्तियों के साथ आ सकते हैं। भगवान सर्वसमर्थ हैं। वे सब कुछ कर सकते हैं। वे किए हुए को उल्टा कर सकते हैं, उल्टे किए हुए को

फिर पलट सकते हैं। उन सर्वशक्तिमान् के लिए कुछ भी असम्भव नहीं है। सर्वशक्तिमान् सब कुछ करने में समर्थ हैं।

हमारे अनुभव के अनुसार कोई भी आकार- three dimensions के अंतर्गत होता है अर्थात् उसकी कुछ लम्बाई, चौड़ाई और ऊँचाई होती है। यदि कोई कहे कि

असीम का आकार है तो हम झट सोचने लगते हैं कि वह एक सीमा में बंधे होंगे। (जबकि ये गलत है) परन्तु जन-साधारण में तो ऐसा विचार ही प्रचलित है। जबकि भगवान् आकार में रहते हुये भी असीम रह सकते हैं। असीम की यह अचिन्त्य शक्ति साधारण बुद्धि की समझ का विषय नहीं है। गणित शास्त्र के

साधारण ज्ञान से हम ये समझते हैं कि समानान्तर रेखाएँ आपस में कभी भी नहीं मिलती हैं। (Parallel straight lines never meet) किन्तु गणित शास्त्र के उच्चतर (higher mathematics) में जाने से पायेंगे कि समानान्तर रेखाएँ असीम में जाकर मिल जाती हैं (They meet at infinite) अंक-शास्त्र के साधारण

योग-वियोग के ज्ञान में एक में से एक घटाने पर ज़ीरो बचता है। किन्तु higher mathematics से जाना जाता है कि असीम में से असीम घटाने पर भी असीम ही बचता है-

‘ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादय पूर्णमेवाविशिष्यते।।’
(वृहदारण्यक, 5 अध्याय)

पूर्णरूप अवतारी से पूर्णरूप अवतार स्वयं प्रादुर्भूत होते हैं; पूर्ण अवतारी से लीला की

पूर्ति के लिये पूर्ण अवतार निकलने पर भी अवतारी में पूर्ण ही अवशिष्ट रहता है, तनिक भी वह घटता नहीं। पुनः अवतार की प्रकट लीला समाप्त होने पर (जब अवतार, अवतारी में मिल जाता है) तब भी अवतारी की पूर्णता में वृद्धि नहीं होती।

शास्त्रों में बहुत से स्थानों पर भगवान् को साकार कहा

गया है और बहुत से स्थानों पर निराकार कहा गया है। शास्त्रों को मानने से शास्त्रों के दोनों प्रकार के उपदेश ही मानने होंगे। शास्त्रों में असंगत बातें कुछ भी नहीं हैं। संगति किस प्रकार होती है, उसे समझने की चेष्टा करनी होगी। भगवान् को निराकार कहने का अर्थ है, उनका कोई भी प्राकृत (दुनियावी, नाशवान) आकार

नहीं है। साकार कहने का अर्थ है, वे अप्राकृत आकार वाले हैं-

अपाणिपाद श्रुति वजर्ज प्राकृत पाणि-चरण।
पुनः कहे, शीघ्र चले, करे सर्वग्रहण।।
(चै.च.म. 6/150)

जो श्रुतियाँ ब्रह्म को 'अपाणि-पाद' (अर्थात् ब्रह्म के हाथ-पाँव नहीं हैं ऐसा) कहती हैं, परन्तु वे 'प्राकृत' हाथ-पाँव नहीं हैं। फिर वही श्रुतियाँ और भी कहती हैं कि- ब्रह्म शीघ्र चलते हैं तथा तब वस्तुओं को ग्रहण

करते हैं।

अचिन्त्य शक्ति वाले असीम भगवान् में तमाम विरुद्ध गुणों का सामंजस्य सम्भव है। यदि कोई कहे कि भगवान् जब मायिक जगत् में अवतीर्ण होते हैं तो माया के तीन गुणों को स्वीकार करके व मायिक आकार को लेकर ही अवतीर्ण होते हैं, अतः भगवान् के जितने स्वरुप हैं व अवतारादि

हैं, वे सभी मायामय हैं; बड़ा ज़ोर देकर यह कहा जा सकता है कि वे सात्त्विक तनु हैं, उनका स्वरुप पूर्ण-सात्त्विक है। उसके जवाब में कहते है कि भगवान् निर्गुण हैं तो उनका स्वरुप भी निर्गुण है, कभी भी मायिक नहीं है। अर्थात् भगवान् का स्वरुप कभी भी माया का बना नहीं हो सकता क्योंकि माया भगवान् के

अधीन तत्त्व है।

भगवान् निर्गुण (माया के गुणों से रहित) स्वरुप से ही इस माया के जगत् में अवतीर्ण होते हैं। बद्धजीव अपने इन माया के नेत्रों से उनको मायामय ही देखते है। हाँ, निर्गुण शुद्धप्रेम नेत्रों से भगवान् का निर्गुण-अप्राकृत स्वरुप दर्शन हुआ करता है। समझने की सुविधा के लिये उदाहरण

के रूप में कहा जा सकता है कि जैसे जेल में कैदी के लिए एक अलग प्रकार की पोषाक पहनने का नियम है, किन्तु यदि गवर्नर वहाँ जेल का निरीक्षण करने के लिए आ जाये तो उसको वैसी ही पोषाक पहन कर नहीं जाना होगा। वह अपनी पोषाक में ही जा सकता है। वैसे ही मायिक कारागार में भगवान् जब आते हैं तो उन्हें

मायिक बद्धजीव की पोषाक-गुणमय शरीर लेकर नहीं आना होगा। वे अपने निर्गुण स्वरुप से ही आते हैं और वापिस चले जातें हैं। यहाँ तक कि भगवान् के धाम से आने वाले उनके भक्त भी अपने निर्गुण स्वरुप में ही इस जगत में आते हैं और वापस चले जाते हैं।

'प्राकृत करिया माने विष्णु कलेवर।
विष्णुनिन्दा आर नाहि इहार ऊपर।।'
(चै.च.आ. 7/115)

विष्णु के शरीर को प्राकृत मानना, विष्णु भगवान की सबसे बड़ी निंदा है।

भगवान् को हम कैसे पा सकते हैं, क्योंकि भगवान् तो असमोद्ध्व तत्त्व हैं अर्थात् उनके बराबर भी कोई नहीं है व उनसे बड़ा भी कोई नहीं है। वे पूर्ण और असीम हैं, उनके समान या उनसे अधिक कोई भी वस्तु नज़र नहीं आती है।

'न तस्य कार्यं करणंच विद्यते न
तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते।
परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयेतस्वाभाविकीज्ञान
बल क्रिया च।।'
(श्वेताश्वतर उपनिषद 6/8)

उन परब्रह्म परमात्मा की कोई भी क्रिया प्राकृत नहीं होती, क्योंकि उनका कोई भी करण-हस्त पादादि इन्द्रियाँ प्राकृत नहीं होतीं। वे अप्राकृत शरीर से एक ही समय सब जगह विराजमान रहते हैं। इसलिये उनसे बड़ा तो दूर रहे, उनके

समान भी कोई दूसरा नहीं दीखता। उन परमेश्वर की अलौकिकी शक्ति नाना प्रकार की सुनी जाती है, जिनमें ज्ञानशक्ति, बलशक्ति और क्रियाशक्ति – ये तीन प्रधान हैं। इन तीनों को कर्मशः चित्-शक्ति या सम्वित्-शक्ति, सत्-शक्ति या सन्धिनी-शक्ति और आनन्द-शक्ति या ह्लादिनी-शक्ति भी कहते हैं।

जिनके समान या अधिक कोई भी वस्तु दिखाई नहीं देती है, तब उनको पाने का उपाय उनको छोड़कर या यूँ कहें कि उनकी इच्छा को छोड़कर दूसरा हो ही नहीं सकता। यदि भगवद् इच्छा को छोड़कर दूसरा कोई उपाय है, ऐसा स्वीकार किया जाये तो वह उपाय या तो भगवान् के समान होगा अथवा उनकी

अपेक्षा अधिक होगा। किन्तु भगवान् के समान या अधिक किसी भी वस्तु की कल्पना नहीं हो सकती है। इसलिए जिसका जो भी मत है, वही भगवत् प्राप्ति का उपाय है, यह कभी भी स्वीकृत नहीं हो सकता। कारण, भगवान् किसी के भी अधीन तत्त्व नहीं हैं। भगवद् इच्छा से भगवान को पाने से भगवान् के

असमोर्द्धत्व या भगवत्ता की हानि नहीं होती है। भगवद्-इच्छानुवर्तन का अर्थ है भगवान् की इच्छा के अनुसार चलना। इसका ही दूसरा नाम भक्ति है। इसी से भगवान् की प्राप्ति होती है।

'भज्' धातु से भक्ति शब्द उत्पन्न हुआ है। 'भज्' धातु का अर्थ है सेवा। सेवा का अर्थ है सेव्य का प्रीतिविधान अर्थात

सेव्य को प्रसन्न करना। सेव्य के इच्छा अनुसार चलने से ही सेव्य की प्रीति होती है, वह प्रसन्न होता है। इसलिए भगवत् प्राप्ति का एकमात्र उपाय है शुद्धा प्रीति या शुद्धा भक्ति।

भक्त्याहमेकाय ग्राह्यः श्रद्धयात्मा प्रियः सताम्।
भक्तिः पुनाति मन्निष्ठा श्वपाकानपि सम्भवात्।।
(श्रीमद्भा. 11/14/21)

श्रीकृष्ण जी उद्धव से कहते हैं

कि एकमात्र भक्ति द्वारा ही उनको प्राप्त किया जा सकता है।

भक्ति रेवैन नयति भक्तिरेवैनं दर्शयति
भक्तिवशः पुरुषो भक्तिरेव भूयसी।
(माठर श्रुति वचन 3/53)

भक्ति ही जीव को भगवान् के निकट ले जाती है, भक्ति ही जीव को भगवद्दर्शन कराती है। वे परम पुरुष भगवान् एकमात्र भक्ति के ही अधीन हैं। भक्ति ही सर्वश्रेष्ठ है।

भक्ति ही भगवान् के निकट ले जाती है, भक्ति ही भगवान् को दिखाती है। परम पुरुष भक्ति के वश में हैं। इसलिए भक्ति ही सर्वश्रेष्ठ है।

शरणागति: वायु पुराण में कहा गया है कि अनुकूल भाव का संकल्प, प्रतिकूल भाव का वर्जन, भगवान् मेरी रक्षा करेंगे – ऐसा दृढ़ विश्वास, पालक के रूप में उनका वरण,

आत्मनिवेदन और अकार्पण्य – ये छः प्रकार की शरणागति है। भक्तिशास्त्र में प्रतिपादित अपने अभीष्ट देवता के प्रति रोचमाना प्रवृति ही 'आनुकूल्य' है, इसके विपरीत 'प्रातिकूल्य' है, वे ही मेरे रक्षक हैं, उनके अतिरिक्त मेरा अन्य कोई रक्षक नहीं है – इसी रूप में उन्हें वरण करना होता है। रक्षा में प्रतिकूल अवस्था में

उपस्थित होने पर वे ही मेरी रक्षा करेंगे – गजेन्द्र, द्रौपदी आदि में समान ऐसा विश्वास होना चाहिए। अपने स्थूल और सूक्ष्म देह के साथ स्वयं को श्रीकृष्ण के अर्पण करना 'निक्षेपण' है। अन्य किसी के सामने भी अपना दैन्यज्ञापन नहीं करना ही 'अकार्पण्य' है। यही शरणागति है।

{भक्ति आत्मा की नित्यवृत्ति

है; साध्य वस्तु की प्राप्ति के लिये भक्ति केवल अनित्य साधन मात्र नहीं है। भक्ति ही साध्य है और भक्ति ही साधन है। भजनीय भगवान् नित्य हैं, भजन करने वाला भक्त नित्य है और दोनों में सम्बन्ध कराने वाली भक्ति भी नित्य है।}

श्रीलपरमगुरुदेव